

संकेत

बुद्ध का दुख और मेरा

तारानंद वियोगी

बुद्ध का दुख और मेरा

तारानंद वियोगी की मैथिली कविताएं

संवेद पुस्तिका-3

अनुवाद
अविनाश

संवेद फाउंडेशन
दिल्ली-110089

सम्पादक : किशन कालजयी

सह सम्पादक : राजीव रंजन गिरि
सम्पादकीय सहयोग : महेश्वर, नेहा

प्रबन्ध-सम्पादक : कुमकुम

सम्पर्क
बी-3/44, तीसरी मंजिल
सेक्टर-16, रोहिणी, दिल्ली-110089
फोन : 011-27891526
मोबाइल : 09868184228, 09868175601
samvedfoundation01@gmail.com

प्रकाशक
संवेद फाउण्डेशन

आवरण
देव प्रकाश

अक्तूबर, 2008

मुद्रक
क्वालिटी ऑफसेट
नवीन शाहदरा, दिल्ली 110032

मूल्य : पच्चीस रुपये

सम्पादन/संचालन : अवैतनिक/अव्यावसायिक

संस्कृति
जिसमें झुमका बरामद होता हो दुमका में
और
वज्रबाली काशी में
बुद्ध बरामद हों मनुआं नदी में...
क्या आश्चर्य?

उम्मीद की कविताएं

तारानंद वियोगी की कविताएं मेरे लिए महज पाठ-सामग्री कभी नहीं रहीं, उन तमाम शब्दों की तरह जो अनगिनत लेखकों ने इजाद किए और जिन शब्दों ने हमारे लिए दुनिया को जानने-समझने वाले दरवाजे की सांकल उतारी। तारानंद की कविताओं ने मेरी निजी दुनिया का निर्माण किया है, जिनमें चलने-बोलने-सोचने और लिखने का तरीका शामिल है। मेरी पैदाइश के ठीक से अठारह बरस भी नहीं हुए थे, जब तारानंद से मेरा परिचय हुआ। मैं उस वक्त अभिव्यक्ति के खेत में उगा हुआ नवान्न था और वे हमारी भाषा को कहन की नयी गली में ले जाने वाले समर्थ साहित्यिक युवा। इस गली में परम्परा की झोपड़पट्टियां नहीं थीं, आधुनिकता के बनते हुए मकान थे। उस वक्त उनके पास विधाओं की कोई ऐसी सड़क नहीं थी, जिस पर वे दौड़ नहीं रहे थे। उनके अलावा मेरे पास उस वक्त बाबा नागार्जुन थे, जो सांसों की आखिरी तकलीफ से गुजर रहे थे और कभी-कभार मेरे कागज पर थरथराती उंगलियों में कलम फंसाकर प्रसाद की तरह कुछ वर्ण खींच देते थे। साहित्य की मेरी पाठशाला में वह पहली कक्षा थी, तो तारानंद वियोगी मेरे महाविद्यालय। मेरी अपनी आवारगी ने विश्वविद्यालय में दाखिल नहीं होने दिया, वरना हम भी आदमी थे काम के।

तारानंद वियोगी महिषी के रहने वाले हैं। यह गांव बिहार के सहरसा जिले में पड़ता है। इसी गांव में शंकराचार्य से शास्त्रार्थ करने वाले मंडन मिश्र हुए और राजकमल चौधरी भी, जिनके हिंदी उपन्यासों और जिनकी मैथिली कहानियों ने आने वाली पीढ़ियों को एक नयी लीक, नया साहस दिया। महिषी में ही सिद्ध शक्तिपीठ तारास्थान है, जिसकी वजह से शहरी रहवासियों की भीड़ आये दिन जुटती रहती है। तारानंद की अपनी

शख्सियत में महिषी के इन तीनों तत्त्वों का निचोड़ मौजूद है। एक सिरे से आप उनकी कविताएं पढ़िए, मंडन मिश्र का तर्क-कौशल, राजकमल चौधरी का आधुनिक-बोध और तारास्थान की आस्था का त्रिकोण आपको हर जगह मिलेगा।

भिलनसार तारानंद एकान्तिक भी हैं, जो उनकी अध्ययनशीलता को बनाये रखता है। वे संस्कृत के विद्यार्थी रहे हैं और अंग्रेजी की शताधिक पुस्तकें उन्होंने पढ़ी हैं। वे बचपन में अल्पकालिक चरवाहा भी रहे—बकरी चराते थे। वे उन समकालीन कवियों की तरह नहीं हैं, जिनके पांवों में हमेशा चप्पलें रहीं और जो संवेदना के कारोबार को एक शानदार सेल्समैन की तरह आगे बढ़ाना जानते हैं। उनका प्रिय श्लोक है—ईशावास्य मिदं सर्वम्। ईश्वर सभी जगह है। वह ईश्वर जो आपकी चालाकियों को उंगलियों पर गिन रहा है। वह ईश्वर जो आपके शार्टकट का हिसाब सहेजकर रख रहा है। इसलिए चाहे वह जीवन जीने का मोर्चा हो या कविता रचने का, ईमानदारी और पवित्रता तारानंद के लिए पहली शर्त है।

इस संग्रह में उनकी जितनी भी कविताएं हैं, उन्हें जोड़ेंगे तो आपको उनका जीवनवृत्त मिलेगा। एक ऐसा जीवनवृत्त जिसमें जितनी मात्रा में संताप है, उम्मीद के आसार भी लगभग उतनी ही मात्रा में है। उनकी कविताएं सिर्फ दृश्य नहीं हैं—दर्शन हैं, जो जीने की नयी राह देते हैं। तारानंद वियोगी की कविताएं मनुष्यता के विविध आयामों की चर्चा करती चलती हैं। खेमों-जातियों में बंटे समाज की नयी व्याख्या करती चलती है। सरकारी दफ़्तरों में फैले भ्रष्टाचार की तल्ख रिपोर्ट करती चलती है। ये तीन तथ्य मैं उनकी महज तीन कविताओं को सामने रखकर जाहिर कर रहा हूं—बुद्ध का दुख, ब्राह्मणों का गांव और गांधी जी। वरना जितनी कविताएं, उतने अर्थ। हर कविता इतिहास और समाजशास्त्र की पगडंडी पर अनोखी संवेदना के क़दमों से चलती हुई। इन कविताओं का अनुवाद मेरे लिए संभव नहीं था। ठीक उसी तरह जैसे किसी भी लोकभाषा के साहित्य का अनुवाद किसी दूसरी भाषा में संभव नहीं, अगर उस साहित्य की चेतना भाषाई मौलिकता में नहायी हुई हो। यानी ये कविताएं अपनी मूल भाषाई लय में जो कह रही हैं—सिर्फ उनके सारों का यह संकलन है।

मेरे लिए तो यह उस काम की तरह है, जो खत्म नहीं हुआ है और जो कायदे से अभी शुरू भी नहीं हुआ है।

—अविनाश

अनुक्रम

पृथ्वी सूक्त

वायुमंडल था जहां तक
वहां-वहां तक लोगों ने चिमनियां खड़ी कर लीं,
कितनी मुसीबत होती
यदि दीवारें खड़ी कर ली गई होतीं वहां तक
जहां तक मौजूद हो तुम पृथ्वी!

लेकिन नहीं
कैसे खड़ी हो सकती थीं दीवारें?
आगे तो समंदर है
और आगे तो हैं बर्फ लदी चोटियां!

तुमने खूब-खूब कोशिश की
खूब-खूब तुमने बचानी चाही जिंदगी
पृथ्वी!
तुमने उत्कट अभीप्सा रख कर अपना निर्माण चाहा

हर खात्मे को लेकर
तुमने एक-एक विकल्प की रचना रची।

अब अगर
इधर ये हैं
तो उधर वे भी हैं...

क्षमा-याचना

अछूत नहीं था
था तो मैं अन्ततः थाली ही,
जिसमें जाने कितने लोगों ने
भोजन किया।

जितना हुआ था प्रक्षेपण
बहुत कुछ सीख गया,
सीख पाया नहीं जो अपनी ताक़त से
वही प्रत्यावर्तित हुआ।

पर, आप कहते हो—
बहुत कुछ लिखा है मैंने
जाने कितनों को
आहत-विहत किया है
मेरे तथ्यों ने।
मैं लेखक हूँ बस।
आप सबने जो मुझे दिया
उसी में से तो हुआ है प्रत्यावर्तित
क्योंकि
अछूत नहीं था मैं।

परिणति

बलात्कार के विरुद्ध
एक ज़ोरदार कविता लिखता हूं मैं
और इच्छा करता हूं
कि बलात्कार अब बंद हो

भूल जाता हूं
कि जो बलात्कारी होगा
वह मेरी कविता नहीं पढ़ेगा

खूब हूं मैं भी!
बिस्तर पे पसर के
सिर्फ कविता ही लिखूंगा
तो भूल कैसे नहीं जाऊंगा
बहुत होऊंगा नामी
तो अधिक से अधिक
'अकादमी कवि' होऊंगा।

छूटना

मुझे खेद है कि मैं आपके साँचे पर
खरा नहीं उतर पाया!

मैंने अब तक देरीदा को नहीं पढ़ा
फूको का कोई सिद्धान्त मुझे याद नहीं
सचमुच मैं शर्मिन्दा हूँ

नहीं पढ़ पाया अब तक बेलीकोव्स्की, होर्खीमेर
अडोर्नो या इतालो काल्विनो की
कोई भी एक किताब

और तो और
नामवर सिंह से एक मुलाक़ात तक न कर पाया!

मुझे बहुत-बहुत दुख है
कि न मैं ठीक से सबअलटर्न समझता हूं
न भाषण दे सकता हूं पोस्ट माडर्निज़्म पर
सच, बहुत-बहुत दुख है!

लेकिन भाई
मैं करता भी क्या
कब वक्त दिया मुझे मेरे गांव ने?

चमोकन की तरह चिपकी रही धरती मुझसे
मैंने तो बहुत मिन्नत की
न मुझे छोड़ा मेरी मां ने
न धान के सोना कटोरा खेत ने।

छूटता है भाई
हर किसी से कुछ न कुछ छूटता है!

क्या आप ही बता सकेंगे
कि मौसम की पहली बूंद
जब गिरती है धरती पर
क्या तापमान होता है किसान के मन का?
क्या आप मेरे गाँव के उस मजूर की कथा बता सकेंगे
जो पचास वर्षों से जोत रहा है भारतीय गणराज्य स्थित ज़मीन
लेकिन, जिसके लिए झोपड़ी भर धरती
इस देश के पास नहीं है?

क्या आप जानते हैं कि जट जटिन खेलतीं मेरी बहनें
क्यों डालती हैं मेढ़कों को ओखल में?
गांव की बहू बेटियाँ सामा चकेवा के गीतों से
किसे बुलाती हैं?

और तो और
आप तो शायद यह भी नहीं जानते
कि हर सूखे के बाद
क्या बुदबुदाता है बूढ़ा बरगद
और हर बाढ़ के बाद
नदी क्यों पछताती है?
उस पोस्ट ग्रैजुएट का नाम ही बता दें आप
जो नेहरू चौक पर पान की दुकान चलाता है?

या फिर
उस लड़की की गाथा
जिसे उसका सम्भ्रान्त भाई वेश्यालय में बेच आया था?

मैंने कहा न
टूटता है
हर किसी से
कुछ न कुछ
टूटता ही है!

त्वया समं यास्यति

बड़े तेजस्वी थे वह राजा
मगर एक दिन चले गये।

बड़े खूंखार थे
थे बड़े मायावी
एक और राजा
बड़े मेधावी थे
जाने कैसे सूंघ लेते थे ख़तरा
और जनमने से पहले मार डालते थे
मगर एक दिन
खुद भी मार डाले गये।

एक और आये
वह भगवान थे
एक और आये
वह शैतान थे।

समन्दर को चूस लेने वाले आये
सूरज को ढंक देने वाले आये
कुछ घोड़ों पर कुछ बैलों पर
कुछ गोलों पर कुछ थैलों पर
कुछ खाली आए कुछ भरे हुए

कुछ ज़िन्दा कुछ मरे हुए
मगर सब गये
सबके सब चले गये।

चमको बमको राजा
अकड़ो पकड़ो
जो चले गए वह तुम नहीं थे

और चलाओ गोलियां
और स्वादो मछलियां
चप्पा-चप्पा जमीन नपवा लो
टके-टके पर लिख लो अपना नाम

खाओ गाओ राजा
पीओ जीओ
मस्ती करो राजा मस्ती
दुश्मन के हिस्से जाए पस्ती

भरभराओ राजा
मगर चरमराओ मत

यह बेबस धरती
किसी के साथ भले न गयी
पर तुम्हारे साथ जाएगी
पक्का जाएगी
तुम्हारे साथ नहीं
तो क्या ज़हन्नुम में जाएगी?

वे और हम

रहने के लिए उन्होंने हमें खूबसूरत मकान दिये
ढेरों उपकरण दिये सजने सजाने को
उन्होंने दिखाया हमारे जीवन से प्यार
कई कई राह दिखायी आगे बढ़ने को

बुद्धि का सद्भाव ही इसे कहना चाहिए
कि उन्होंने हमें नित नवीन यन्त्र दिये तन्त्र दिये
बुद्धि बहलाने के लिए दी मुद्रण कला
मन बहलाने के लिए टेलीविजन

हमीं जैसे लोगों की उन्होंने कहानियां बनायीं
हमीं जैसे लोगों का दर्द पिरोया
ढेर ढेर सजाये हवामहल दिखायी नीचता

पहले उन्होंने हथियार बनाये
फिर इस तरह दिखाये क़त्ल कि यह
तो सहज सम्भावित समझो
इस तरह दिखाये अपराध कि यह तो होना ही होना है

अपना हर पतन हमें खूबरसूरत दिखाई दिया
अपनी हर पशुता तर्कसंगत।
अपने हत्यारों के लिए हमने कीं प्रार्थनाएँ

कि वे दुनिया भर में धन्धा करें खाएँ बस हमारे घर न आएँ

जिनके घर वे गये
हमने उन्हें भूल जाने की आदत डाली

बुद्धि का यह चरम विन्यास ही कहना चाहिए
कि जो जो उन्होंने हमारे लिए बनाये
सबमें द्वंद्व के बीज पिरोये
कि हम उलझें कि हम विमर्श करें

हम आज सोच रहे हैं और वे हंस रहे हैं
जब तक हम सोचें
वे क्यों न खिलखिला कर हँसते रहें?

गाँधी जी

जिले भर के अफसरों की मीटिंग में
कलक्टर ने आज मुझे
'गाँधी जी' कहकर जलील किया

मुझे लगा भी
कि मैं जलील हुआ हूँ

गाँधी की सोच और नीतियों से
असहमतियां हैं मेरी
सो तो है अपनी जगह
जवाहर लाल से अटल बिहारी तक
कान भरते रहे हैं मेरे, तमाम समय
कि गाँधीवाद में न हमारी मुक्ति है
न चेतना का उन्नयन
सो लगा भी कि सच में जलील हुआ हूँ

लेकिन दोस्तो
बीत चुके विषम शताब्दी के वे मीठे दिन
सुनता हूँ कि नयी सहस्राब्दी आयी
देखता हूँ कि तीसरा कोई रास्ता बचा नहीं है अब
आज या तो आप अंगरेज हैं
या हैं गाँधी जी

अगर आप कुछ रचना चाहते हैं
बचाना चाहते हैं कुछ धरती पर का
तो आपको गाँधी जी ही कहा जाएगा

तैयार रहिए!

छोटकू

पृथ्वी का जीवन पेड़ पौधों के बिना असम्भव है
छोटकू ने अपनी पाठ्यपुस्तक में पढ़ा

पंडितों की कही हर बात पर शक करना चाहिए
कुछ दिन हुए
मैंने छोटकू को समझाया था

कैसे न समझाता?
भोले भाले बच्चों से कहते पंडित
कि लोकतन्त्र 'लोक' के लिए 'तन्त्र' है
कि वैज्ञानिकों ने जीवन को 'जीवन्त' बनाया
कि हमें अपने देश भारत पर 'गर्व' है!
भाई रे, किसे है गर्व?
आए तो सामने!
कैसे न समझाता?

छोटकू ने पढ़ा
असम्भव है पेड़ पौधों के बिना पृथ्वी का जीवन
छोटकू ने समझा
शक करना चाहिए पंडित वाणी पर
सो छोटकू ने इस बात पर भी शक किया!
'पेड़-पौधों' की जगह 'मनुष्य' होना चाहिए

मनुष्य के बिना पृथ्वी का जीवन असम्भव है
कैसा रहेगा यह कहना?
छोटकू ने मेरा विचार चाहा।

कैसा रहेगा
यह तो बाद की बात
पहले यह तो बता छोटकू कि
'पेड़ पौधों के बिना' क्यों नहीं
मनुष्य के ही बिना क्यों?

दुधिया धान के नवान्न चिउड़े की तरह
अपने धारोष्ण चिन्तन को चबाता
गम्भीर विचारक की मुद्रा में बोला छोटकू
मनुष्य ही न रहे तो पेड़ पौधों का क्या लाभ?
कौन उसकी शोभा देखेगा?
कौन खाएगा उसके फल, सूंघेगा फूल?
पेड़ों के फरनीचर कौन बनवाएगा?
किसके काम आएगा उसका बनाया ऑक्सीजन?
मनुष्य ही न रहे गुरुजी तो कौन करेगा खोज,
कि पौधों में भी जीवन होता है!

वाह छोटे गुरुजी वाह
क्या धांसू डायलॉग मारा है तुमने
यही कहना चाहते हो न कि मनुष्य के लिए
ही तो पेड़ पौधे होते हैं?

जी हां बिल्कुल... हां जी यही बात!

पेड़ पौधे तो जनमे मनुष्य के लिए, ठीक बात!
लेकिन यह तो बता छोटेलाल

मनुष्य जनमा किसके लिए?
नेताओं के लिए, कि समय समय पर वोट देता रहे?
बनियों के लिए, कि उनके सामान बिकें ताबड़तोड़?
टीवी वालों के लिए, वैज्ञानिकों के प्रयोग के लिए?
या धर्माधीशों के सामने सिर झुकाने के लिए?
मनुष्य जनमा किसके लिए?

कोई किसी के लिए पैदा होता भी है क्या दोस्त!
अपने हक़ की ज़रा देर छोड़ धरती के हक में सोच!

तुम जो जनमे हो छोटू
समझ बूझ कर सोच विचार कर तो जनमे नहीं हो
लेकिन क्या कह सकोगे
कि किसके लिए जनमे हो?

खिलखिला उठा दूधिया धान का नवान्न चिउड़ा
पितृभक्ति दिखानी शुरू की उसने औपचारिकतावश
मैं तो अपने पापा का बेटा हूं
पापा के लिए पैदा हुआ हूं

अब आप ही कहो भाई साहब
छोटकू की इस बात पर मैं भी न खिलखिलाऊं
तो क्या करूं?

चक्रव्यूह

मित्र को हुई गिल्टी
घाव के चलते
मुझे डंकल के चलते
नींद नहीं आती

खा नहीं पा रहा हूँ भर पेट
सोमालिया के चलते
मुस्कुरा नहीं पाता रत्ती भर
तसलीमा के चलते

देखो न
दूरदर्शन के चलते
स्वास्थ्य नहीं रहता ठीक
स्नान नहीं कर पा रहा मन भर
सरदार सरोवर के चलते

बहुत तकलीफ में हूँ भाई
ग्रस लिया है रोगों ने चतुर्दिक
औनाती रहती है बेचैन आत्मा रात दिन
तक़लीफें कुछ मंडल कमंडल के चलते
कुछ पूजा भट्ट के चलते
तुम्हें हुई घाव के चलते गिल्टी
मुझे तो डंकल के चलते
नींद नहीं आती

ईशावास्यमिदं सर्वम्

समूचे ब्रह्मांड में फैले हैं देवता
तीनों लोकों में चौदह भुवनों में दसों दिशाओं में
जल में थल में अनिल अनल में
ओह! कोई जगह खाली नहीं बची
जहां आदमी सिर्फ अपने साथ हो सके

तरस गया हूं तड़प रहा हूं एकान्त के लिए
लेकिन ये देवता! जीना हराम कर दिया है इन्होंने!

पानी पीता हूं
तो बैक्टीरिया वायरस की तरह
जाने कितने देवता मेरे आमाशय में पहुँच जाते हैं
कैसे खाऊं अन्न?
वृक्ष के फल भी शुद्ध नहीं हैं न मुरगी के अंडे
जाने किस धूर्त ने इस मिलावट की शुरुआत की
कि पाँच हजार वर्षों से
मेरा स्वास्थ्य चौपट चल रहा है!

चीलर की तरह ये
अंडे बच्चे देते जा रहे हैं
बढ़ती जा रही है मिलावट
हराम होता जाता है आदमी का जीवन

पत्नी से प्रेमालाप तक नहीं कर सकता चुपचाप
जाने कितने देवता
टकटकी लगाकर
घूरते रहते हैं

अपना वीर्य तक नहीं बचा विशुद्ध
कि हम वो बच्चे पैदा कर सकें
जो सिर्फ हमारे हों

दुख समझो मेरा दुख
देवता मेरे सपने चुराते हैं
और महंथों को बेच आते हैं।

ब्राह्मणों का गांव

बलात्कृत माँ की तरह
रो रहा है ब्राह्मणों का गाँव

उस बेदम हताश बेसहारा स्त्री की तरह
जिसके बच्चे की बलात्कारी ने कर दी है हत्या
जिसके पति को ले गये पकड़ कर अपराधी
जिसके जीवित रहने का नहीं बचा है कोई तर्क
उसकी अपनी ही अवधारणा में

मगर सब्र छोड़ गला फाड़
रो रही बलात्कृत स्त्री

यह स्त्री है
या फिर यही है अपना ब्राह्मणों का गाँव?
(शास्त्रीय संस्कृति की जननी!)

उसके क्रन्दन से फट रहा है
आर्यावर्त का हृदय
ग़ायब हुए महाराज मनु के चैन-नींद
वशिष्ठ, बादरायण के झड़ते आंसू लगातार
कातिक अगहन में उबडुब करती है कोशी-कमला

इस जगह से भंडार-कोण में सुनिए!
रो रहा है ब्राह्मणों का गाँव
और उत्तर दिशा में
किकिया रहा है कोई रोगग्रस्त कुत्ता।

कैसा भयानक है यह दृश्य!
चौकीदार ठकठकाता है
पक्की सड़क पर अपनी लाठी
और रो रहा है ब्राह्मणों का गाँव।

रो रहा है ब्राह्मणों का गाँव
तो समझना चाहिए
कि वह रोते रहना नहीं चाहता

रोना
रोने के कारणों के नष्ट होने की अभीप्सा है
रोना है निवेदन कारणों के खात्मे का—

—उठो उठो नगरवासियो
उठो गोरथारी में सोए देवता
ऐंठार पर फेंके हुए ब्रह्म उठो
शौच स्थान में गड़ी काली उठो
शिव, जरा बाहर निकलिए भंग के बोझे से
धर्मराज, ताड़ीखाने की मिट्टी के नीचे से बाहर निकलो
जैसा हमने किया वैसा पाया, गिरे खत्ते में
तुम सब तो देवता हो!
देते जाओ माफी
करते जाओ रक्षा
दुहाई ज्वालामुखी की, सहाय सातो बहन शीतला!

—रोना है अभिव्यक्ति
भीतर उठे उद्रेक की।

शब्द नहीं शब्दातीत में थाहो इस नाद को कवि!
व्याकरण नहीं होता उस उद्रेक का
कि तुम रचने बैठ जाओगे साहित्य!
साहित्य से बाहर घटित
एक साहित्यिक घटना है
रोना।

सुनो कवि, विनती
कवि, उद्रेक सुनो
कुछ देर के लिए
मान लो इस गाँव को बेचिरागी
और इसकी चौहद्दी से चारों ओर गूंजते
रोदन को सुनो कवि,शब्दातीत में
जार बेजार रो रहा है ब्राह्मणों का गाँव!
नहीं?

दृष्टि हुई हर तरह भोथरी
शिथिल हुई नेत्र ज्योति
बहरे दोनों कान
संवेदनहीन शरीर की त्वचा
भारी मन
थकित तन
अपंग भुजबल
पाँच हजार वर्षों में
इतना होता रहा मिथ्या माहात्म्य
कि विदा हुआ जीवन का स्पन्दन
विदा हो गया प्रवृत्ति का उछाह

विदा हुआ विस्मय
समझिए
विदा हो गया
जीवन धारण का उद्देश्य!

क्यों जी रहा है अभी भी ब्राह्मणों का गाँव
मुझे कहो, कवि!

राड़ का गाँव, चमार का गाँव तो जी रहा है
कि उसे भोगना है कुछ दिन उछाह
थूकना बिदकना है कुछ दिन
महराज मनु की समाधि पर
अपने बाल बच्चों को बीते युग की
लोककथाएँ सुनानी हैं
मना लेना है कुछ दिन मुक्ति पर्व।

राड़-चमार का गाँव अगर जीता है
तो मानता हूँ कि थोड़ा इन्तजार करने का
उसके पास बहाने हैं पुरजोर

मगर ब्राह्मणों का गाँव क्यों जी रहा है
आज भी अभी भी!
हँसने के लिए जी रहा है राड़ का गाँव, चमार का गाँव
रोने के लिए क्यों जी रहा है ब्राह्मणों का गाँव?
पाँच हजार वर्षों की सदाबहार रणनीति का
यही फल हो?
यही परिणाम हो महाराज मनु का?
लोगों में नहीं लोगों के आभामंडल में
खोजो इस रुदन को कवि!
धुआँ से करो अग्नि की निष्पत्ति

ऋषि बनो ऋषि, ऋषि
समय को चीर कर देखो भविष्य का सर्वनाश।

ये जो घटाटोप क्रन्दन सुन रहे हो सारी रात
याद रखना
रोते नहीं कहीं ब्राह्मण
रोता तो है ब्राह्मणों का गाँव

ब्राह्मण क्यों रोएँ (रोएँ तो उनके दुश्मन)
वे हैं अफसर, वे हैं व्यापारी
वे हैं प्राइवेट तो वे हैं सरकारी
किसान हैं वे, महाजन भी वही हैं
वे क्यों रोएँ?
कोई कम है ब्राह्मण जाति में ड्रग का सहचार?
कोई कम है बिक्री अंग्रेजी दारू की?

कोई कम हैं माफिया?
कोई कम हैं सर्वनष्ट राजनेता
कम्बल फेंक कर घी पीने वाले?
वे क्यों रोएँ?

वे लोग तो हँस रहे हैं कि
केन्द्र में बनी अपनों की सरकार
जेल नहीं जाना पड़ा झाजी मिसरजी को
कादो कादो (कीचड़ कीचड़) हुआ भरे भादो
में पासवान जादो (यादव)
उनके पास तो रोज रोज बनते रहते हैं नये नये बहाने
रोज रोज भले ही
घटती जा रही हो जीवन की सम्भावना
मगर वे क्यों रोएँ?

रो तो रहा है ब्राह्मणों का गाँव

सारी उलझनों को
दूर फेंकते हुए
बखानते हुए अपनी चतुराई के क़िस्से
दुनिया को दुनिया की ही तरफ वापस लौटाते हुए
ब्राह्मण लौटते हैं जब अपने अपने गाँव
अपने कपड़े के संग
अपना मुखौटा अपना रंग
अपना बाना अपना धर्म कर्म मर्म
अपनी विज्ञान बुद्धि, अपनी प्रगतिशीलता
सब कुछ उतार लेते हैं अपनी देह पर से
आत्मा पर से
और तब प्रकृतिस्थ होते हैं

कितनी देर ऑफिस की वर्दी में
बसेंगे गाँव?
कितनी देर बने रहेंगे विनम्र पुरोहित?
कितनी देर विज्ञानी, पंडित?
कितनी देर जनहित के लिए
हपस-हपस कर सोचेंगे भाषण?

उतार लेते हैं अपने अपने लबादे
और तब सहज होते हैं।

यहाँ इसी चौहद्दी में पकता है उनका भात
उनका वीर्य यहीं बनता है
यहीं पलता है उनका भ्रूण
विशुद्ध नग्न ब्राह्मणवाद के
आरामदेह वस्त्रों में सुस्ताते

सहज प्रकृतिस्थ ब्राह्मणों
की नयी पीढ़ी
इसी गांव के रास्ते
इक्कीसवीं शताब्दी में प्रवेश कर रही है।

रो रहा है ब्राह्मणों का गाँव!

ब्राह्मणों के मन में बसी है जो दुनिया
आदर्श धर्मराज्य उनके संस्कार का
उसी आदर्श दुनिया में जीता है ब्राह्मणों का गाँव

प्रवेश करते उस दुनिया में कांपती है सम-वेदना
लोकतन्त्र उनकी आंखों की कीच है
गूँ मूत पोंछने के काम आते हैं उनके लिए संविधान के पन्ने
उस दुनिया में बाकी सभी को पैर के नीचे रखने का चलन है।

राड़ चमार नहीं पसन्द करें पैरों के नीचे रहना
तो यह उनका प्रताप
मगर ब्राह्मण इस पर आक्रोश में उबल सकें,
क्या इससे भी गये?
ऐसा घोर कलयुग देखकर
वे पागल भी नहीं हों?
ब्राह्मण क्या इससे भी गये
कि ऐसी अनीति देखकर
बढ़ा ले सकें अपना रक्तचाप
हार्ट अटैक को बुलाकर ला सकें,
गाली दे सकें श्राप दे सकें
आधुनिकता को लोकतन्त्र को
क्या ब्राह्मण इससे भी गये?

पूजा तो करवाएंगे ही
और सो इन्हीं लोगों से
यादव जी पासवान जी
तब क्यों नहीं मानेंगे इन्हें भूसुर
और खुद को अंत्यज शूद्र?
(यह भी तो आखिर सनातन कर्मकांड की ही व्यवस्था है)
नहीं मानेंगे तो सो उन लोगों का प्रलाप!
मगर क्या ब्राह्मण इससे भी गये
कि समाजवाद की तरफ चूतड़ करके छोड़ें पाद
और विज्ञान को राजनीति को
ऋषि मुनि की झांट बताएँ
ब्राह्मण क्या इससे भी गये?

हो रही है
जीवन के संग माफियाबाजी
एक बलात्कृत माँ
चेतना
बेदम बेसहारा रो रही है
बीज की तरह बिखरे हैं चारों ओर
निस्पन्द निश्चेत ब्राह्मण शिशु
सहज प्रकृतिस्थ अपने पिता से पढ़ते हुए
जीवन का पाठ

पधार रही है गर्दभगोल मचाती
इक्कीसवीं शताब्दी
और रो रहा है ब्राह्मणों का गांव!!!

सबको मिलाएगा समय

गर्व से कहें आप सब कि हिन्दू हैं
सुन रहा है समय समझ रहा है आपका भावार्थ
आगे समय लिखेगा आपकी कथा
कि गर्व से कहते थे आप सब कि शैतान हैं।

चीत्कारों से भरे हैं इतिहास के तहखाने
जिसे आप अक्सर अपना धर्मग्रन्थ बताते हैं
मानना चाहिए उन्हें यातना शिविरों की कार्यवाही रिपोर्ट।
तब भी क्या आप ऐसे ही नहीं थे
जब स्मृतियों ने तय किया आपका जीवन दर्शन?

लेकिन जो जब थे तब थे
अब तो समय कर चुका था बहुत सारे काम
भर रहे थे सड़े गंधाते घाव
धू धू जलती आग पर पानी पटा रहा था
समय आपको आदमी बना रहा था हे महापुरुषो!

लेकिन फिर आपने खेल लिया एक गेम
जो चाहा सो किया
भरे घाव हरे किये फिर लगायी आग
इतिहास को कबाड़ का ढेर बनाया।
समय फिर भी करेगा अपना काम,

एक-एक गन्दगी वह घुला घुला निथारेगा
भरेगा एक एक घाव हर एक हृदय की आग बुझाएगा
तब यह भी जरूर कि सब कुछ करता हुआ मुखर समय
आपकी भविष्णु सन्ततियों को मारता रहेगा ताने
कि ऐसे बेहया लोगों के बच्चे हैं वे
जो समय से सिर्फ मेहतर का काम लेना जानते थे
जबकि जाने कितने बड़े लक्ष्य थे पूरे करने योग्य।
जो बोले सो बोले मगर अकर्मक कतई न होगा समय
बड़ी जिम्मेवारी है उस पर।
उसे इस पृथ्वी को बसे रहने योग्य बनाकर रखना है।

सबको मिलाएगा समय
बिना मिले कैसे बचेगी पृथ्वी बसने योग्य?

तीरभुक्ति

कर्म अकर्म की ऊहापोह में जो उलझे हों
वे पढ़ें पेनल कोड

आंख के अंधे पढ़ें राजनीति शास्त्र
कान के बहरे मानव शास्त्र

थक गए हों जिनके तन मन
थक गया हो भुजाबल
वे पढ़ें खगोलशास्त्र
जीभ और जांघ के उपासक जो हों एकनिष्ठ
वे ज़रा ग़ौर से पढ़ें कामशास्त्र

वधिक बलात्कारी कर्मकाण्ड पढ़ें
नेता अफसर पढ़ें नृतत्त्वशास्त्र

जिन्हें अपने जीवित रहने का
कोई मतलब नहीं आता हो समझ में द्वैधवश
वे जरा ललक से पढ़ें कविता

मैं तो लेकिन अब सिर्फ तुम्हें पढ़ूँगा जीवनमयि
तुम्हारी आंखों से सीखूँगा व्याकरण

तुम्हारे कानों से संगीतशास्त्र

वृथा जनम बिताया व्यर्थ पढ़ पढ़
जबकि उपलब्ध था तुम्हारे चतुर्दिक छिटका उजास।

मिथिला के लिए एक शोकगीत

मेरी ही चेतना के उर्वर दोमट से
जनमे थे ये छांहदार वृक्ष
जिनका एक-एक डार पात काट-काट बेहिसाब
हमने अपने पशुवर्ग को खिलाया

राजा शिवसिंह की पगड़ी को हमने
लुंगी बना कर पहना है अपने एकान्त में
अपने एकान्त में हमने
कभी सुननी नहीं चाही अपनी ही आवाज

मिथिला विराजती तो थी जैसे तन-मन में सम्पृक्त
मगर व्यसनी हम ऐसे
कि अपना ही तन-मन खखोड़-खखोड़
समिधा की तरह झोंका है हमने
बेहोशी के हवनकुंड में

सारी पृथ्वी सारे देश सारे समाज ने
अभ्यर्थना की है हमारी बेहोशी की
जबकि देखो बिडम्बना हमारे समय की
कि बेदम झूर-झमान मिथिला
हमारी ही आत्मा में कांपती रही है पूरे समय
पीपल के पत्तों की तरह

इस भूमंडलीकृत समय में
सब कर रहे हैं हमारी बेहोशी की अभ्यर्थना
जबकि देखो
अपने ही दोनों पांव की
सिन्दूराभिसिक्त अल्पना बनाकर
टांग अगर ली जाती दीवार पर चारों ओर
वह भी बन सकती थी
हमारे जागरण का कारण!

विद्यापति

कर्मकांड के घुप्प अंधेरे में जनमे थे
फेफड़े भर लोकतान्त्रिक हवा तक मयस्सर नहीं थी
तीन धागों के जनेऊ ने
दबोच रक्खी थी तीन जनमों की आजादी
स्मार्त्त ग्रंथों के पर्वताकार स्तूपतले दबे विद्यापति
गज-ग्राह की तरह छटपटाते थे
कखन हरब दुख मोर!
कखन हरब दुख मोर!

(कब मेरा दुख हरेंगे... कब मेरा दुख हरेंगे...)

बागी थे विद्यापति
वंशकुठार निकले शिष्ट-जन-पथप्रदर्शक पुरोधा मूल के
अतः दुख उनका कोई हर नहीं सकता था
कोई बोल नहीं सकता था सहानुभूति के दो बोल

कैसे होता मान्य
कि सर्व-शास्त्र-निष्णात विद्यापति
'भाखा' में रचने लगें कविता
और गर्व से साबित करें देसी बोली को सबके लिए मीठी
(देसिल बयना सब जन मिट्ठा)
कैसे होता मान्य?

समय की निरन्तरता में केन्द्र बिन्दु की तलाश करते विद्यापति
बार बार भटक जाते 'बिसफी' से 'सरिसवपाही' की राह,
न्यायशास्त्र से मजबूत साबित होती लोकशास्त्र की पकड़
चौपालों में
जहां विद्यापति कदलीवन में मुग्गा-मैने-सा फुदकते थे

कूटनीतिमुक्त शान्ति चाहते थे ओइनी के परिवारों में
शिवनगर के राजमार्ग पर वह
अशोक वन का छायादार आशीष मांगते थे

महामहोपाध्याय गुरुजनों से अभिशप्त थे
मगर मिथिला की सदानीरा से
विचारों की नमी मांगते थे विद्यापति

मनुष्य की तरह गाना चाहते थे
संवेदनशील रहकर मथना चाहते थे शास्त्र

उतना बड़ा विद्यापीठ
और इतनी निष्पाप चेष्टा!
विचित्र थे विद्यापति, जुलुम थे!

राजा-रानी होकर भी प्रेम किया करते
थे उनके गीतों के पात्र
आहें भरते थे रूपनारायण
लखिमा की प्रणयकलह से खिन्न होकर
कदम कदम थिरकते स्नेहातुर कृष्ण
दस हजार दफा बुदबुदाते राधा का नाम!

राजमहल की भूलभुलैया के थे अगर दरबारी
क्यों तलाशते थे मांसलता के बीच समर्पण?

रोम-रोम की बेड़ियां तोड़तीं लखिमा ठकुराइन
उनकी संवेदना के ओसारे पर
पद्‌म-पराग-सी बिखर जाती थीं क्यों...

माटी के पुतले में पाते शिव की छवि
या दीन दलितों के हास रुदन में
पत्थर की मूरतों में देखते थे अपरूप रूप
या जीवन्त देह की सीमाओं में?
स्मृतिहीनता के पुराने मरीज की तरह
बार बार भूल जाते विद्यापति
आदमी और देवता का अन्तर
अन्तर स्त्री और महिषी का।

बदहाली और गरीबी से तंग आकर
घर छोड़ भाग जाया करते थे उनके शिव
दौड़ दौड़ कर पूछती थी गौरा पार्वती
कहां गए भोला मेरे कहां गए?
दो बेटे थे शिव के जबकि लोटा था बस एक
रोज खाने के वक्त झंझट बझती बाल-बोधों में
अर्थचक्र की कुगति से सीदित मन
दुखी चातक सा जार जार रोते थे विद्यापति

जितने दुखी थे उनके भोला औघरदानी
उतनी ही तितीर्षा थी विद्यापति की छटपटाहट में
चैन मांगते उछाह मांगते
जन कंठ की मुक्ति मांगते थे विद्यापति
पुरुषों की परीक्षा में खरे उतरे थे
शुद्धाशुद्धि-निर्णय के पारखी थे विवेकधर्मा
मगर फिर भी
देह को भार समझते थे

दुनिया को भवसागर
गरम तवे पर भुनती ज़िन्दा मछली सा तलमलाते थे
इस तरह भयाक्रान्त कर रखा था उन्हें
पापी पंडों दुष्ट दैवज्ञों ने

निर्मल गंगा बहती थी जिनके प्राणों के आर-पार
वही विद्यापति गंगा नदी में पैर रखने से घबराते थे
इस तरह तोड़ा था उनका आत्मविश्वास
आस्था के व्यवसायियों ने

राधा रानी की अक्षय देह का भूपरिक्रमण करके
सुबकते थे विद्यापति लय दर लय
सुबकते हैं आज तक
सुनिए!

कर्मकांड के घुप्प अंधेरे में जनमे थे
मगर बेटे पोतों की सर्द चेतना में
अंगार पैदा करते थे विद्यापति
आतिश की फुलझड़ियों सी जिसकी चमक
पांच सौ बरस दूर तक दिखाई पड़ती थी
दिखाई पड़ेगी
पांच हजार बरस दूर तक।

भनहि विद्यापति

कहां गया, कहां गया
कहां गया मेरा जीवन?
मेरे जीवन का संगीत कहां गया?
और, मेरे हिस्से की उजास?
और, मेरे हिस्से का अधिकार?
और, मेरे हिस्से की गरिमा?

कन्हाई!
तुम्हारी मदिर थपकियों से पुलक कर
सो गयी थी बदहवास
खो गयी थी मस्त अपने भीतर
बाहर से इतना सुरक्षित पाया था खुद को

कन्हाई!
इतना यकीन था तुम पर कि सारी सुध बुध खो गयी थी

अब जगी हूँ तुम्हारे थप्पड़ से
तो देखो न, मुझे मेरा जीवन ही नहीं मिल रहा।
किधर दुबक गयी जाने मेरे प्राणों की सुबह।
कहां छिप गयी मेरी ऊर्जा, मेरी ऊष्मा
मेरा लय, किशन!
टो-टो कर खोजती हूँ चारों ओर

तुम भी कुछ करो न कृपया!

हाँ हाँ, देखो ये मिला मेरा संघर्ष
ये मेरे आंसू भी मिल गये मेरे दायित्व भी
मगर हाय! मेरा जीवन कहीं नहीं दिखता
कहीं नहीं दिखता मेरा संगीत, मेरा गौरव!

कवि विद्यापति कहते हैं—

इस तरह स्त्री का हक चुराने वाले
चतुर मुरारी आपका कल्याण करें!

बुद्ध का दुख

पैंतीस बरस बाद लौटे हैं बुद्ध
रहे इस बीच पटना संग्रहालय के कारागार में

पैंतीस बरस पहले मनुआं नदी में डेरा था
अब बिराजते हैं कारू संग्रहालय की धमनभट्ठी में
देह लगाकर टंगा है साइनबोर्ड कि वह मनुआं नदी से बरामद हुए

संस्कृति, जिसमें झुमका बरामद होता हो दुमका में
और कनबाली काशी में
बुद्ध बरामद हों मनुआं नदी में, क्या आश्चर्य?

तरह तरह से व्यक्त कर जाते हैं लोग अपना ओछापन
और बुद्ध आंख मूंदे निश्चेष्ट बैठे रहते हैं

बुद्ध को अभी और बहुत
दुख भोगने हैं, लगता है!

पंडित पंडों ने किया है प्रयास
बुद्ध फिर से मनुआं नदी-तट पहुंचें

वे लोग महामान्यों को कर रहे हैं प्रभावित
ब्राह्मण-ब्राह्मण की देकर दुहाई

मनुआं तट पर पहले बनेगा मंदिर
जहां बुद्ध शीतला माई कहकर
या नहीं तो कालभैरव कहकर पूजे जाएंगे

जब भी कभी
कृत उद्घाटन को ही फिर से उद्घाटित करना
जरूरी समझेंगे पुरातत्त्ववेत्ता
कि वे शीतला माई नहीं, गौतम बुद्ध हैं,
फिर से मनुंआ नदी में बहाए जाएंगे बुद्ध

तब फिर पता नहीं कब निकल पाएं मनुआं नदी से
कब पहुंच पाएं पटना संग्रहालय के कारागार?

•

माखन, मखान खा"

माखन, मखान खा

लेकिन कैसे खाएगा माखन मखान?
माखन अगर मखान खाएगा
तो परिवार के आठ सदस्यों के मुंह में
कौर कहां से जाएगा?
मखान बेचेंगे जोगीलाल
तो घर में नमक तेल आएगा

माखन मखान नहीं खाएगा
मक्के की रोटी खाएगा

मखान के फेरे में पड़ा माखन
तो मक्के की रोटी भी नसीब न होगी

ऐ भैया जोगीलाल!
माखन अब मखान खाएगा
उसने किताब में पढ़ा है!

मखान खाएगा माखन
तो कुछ तुम भी करो इसके लिए
सवा सेर लावा फोड़ते हो रोज़ रोज़

तो अब डेढ़ सेर फोड़ो
कुछ और करो
थोड़ा करो बचत
माखन है तुम्हारा प्यारा बेटा

ऐ भैया जोगीलाल!
माखन अब मखान खाएगा जरूर
उसने किताब में पढ़ा है!

---

* दरभंगा जिला सम्पूर्ण साक्षरता अभियान की पाठ्यपुस्तक के प्रथम पाठ का शीर्षक।

तुलना

पीपल का गाछ होता है चंचल
हल्का भी झोंका हो
तो नाच-नाच कर मनाता है उल्लास।
आम का गाछ लेकिन, बड़ा गुरुगम्भीर!
ऐ बाबू, फलों के ही राजा हो न
    कि समूचे ब्रह्मांड के?
    (कि इतने गुरु गंभीर?)
बेल के गाछ को किन्तु
इस सबसे न कुछ लेना-देना
हौले-हौले डुलाता है सिर मस्ती में
जैसे सुन रहा हो भीमसेन जोशी से
राग भीम पलासी।

इधर, अनार का गाछ
छोटा-नाटा ही इतना
कि समझिए इसी में खुश!
जैसे गरुड़ झा से गला मिलता नाटा वियोगी
यूं ही हँसे जा रहा हो थैला-छाप हंसी।

और, यह दूब?
यह मरदे तो सबसे जबर्दस्त, सबसे कमाल
हँसो भाई बैजन्ती, अपने फूल पर हँस लो

लेकिन यह दुबरी पंक्ति
अपना अस्तित्व लेकर है मस्त मलंग।

पत्तों में नहीं, अन्न में बसती है हरियाली
जैसे जीवकान्त में कविताएँ

किसी का कोई जवाब नहीं
न न, कोई तुलना नहीं
किसी से किसी की
कतई नहीं श्रेष्ठाश्रेष्ठ-विवेचन।

देखिए न,
दिनभर चरी हैं टोले भर की बकरियाँ
मगर, यह दूब उत्साहित कितनी
कि जैसे नस-नस से चू रहा हो उत्सव।

इतना सघन जीवन-राग
आपने और कहां-कहां देखा?

बागडोगरा में ब्रह्ममुहूर्त

तुम्हारी बनाई चाय
अतिशय तीखी लगती है
ऐ बच्चा, होरीपोदो राय!
टूटा नहीं अब तक नशा
झपक अब भी बाकी है,
लगता है
या तो वातावरण में ही कुछ ज्यादा नमी है
या हमीं में कुछ पात्रता की कमी है।

और तुम भी तो लल्लू के लल्लू रहे **प्रदीप!**
जाने कितनी बार आए-गए इस इलाके में
लेकिन अनचीन्हा ही रहा मौसम का मिजाज–
अंधेरे से जो बनते हैं बिम्ब घनेरो भाई!
वे सब क्या सिर्फ मृत्यु के प्रतीक हुआ करते हैं?

अमलतास के नवीन सुपुष्ट किसलयों पर
झूला झूलने लगे हैं बतास,
नीम के गाछ पर चुनमुनियों का बसेरा
    अकुलाने लगा है।
उस फुदकी चिड़िया को देखो
किस तरह अचरज किए जा रही है!
दौड़ यहां, भाग वहां

मुझे तो लगता है एकबारगी
आह्लाद से जान न निकल जाए इस पगली की।

हाँ, कौआ नहीं बोला अब तक—
यही कहोगे न?
कौआ करे घोषणा—तभी मानूं भोर
इसी कुबोध से जनमता है
क्रान्ति में चिल्होर।

देखो-देखो प्रदीप!
पह फटने का संकेत दे रहा है क्षितिज सीमान्त।
अब लाइन होटल की इस खाट से उठो प्रदीप,
सुबह होने को आयी, देखो
चलो अब हम चलें
नक्सलबाड़ी कुछ ही दूर है यहां से!

सलीका

नहीं नहीं
दरवाजे को ऐसे मत पीटो

दरवाजा अगर बन्द है
तो समझो
वह सो रहा है।

सोते बच्चे को तुम
क्या इस तरह जगाना पसन्द करोगे?
सोए सपनों को
क्या इतिहास इस तरह
जगा पाता है
जैसे कि बामियान में तालिबान?

दरवाजा अगर बन्द है
तो समझो
तुम्हारी पहचान के लिए बन्द है

उसे मीठी थपकी दो
वह जागेगा तो
घरवालों तक तुम्हारी खुशबू पहुंचाएगा

नहीं नहीं
इस तरह नहीं पीटो दरवाजा
जिससे प्रतीति जगे
कि तुम
मस्जिद तोड़ने वालों के वंशज हो।

चक्र

कई-कई प्रकारों के
सामाजिक-मनोवैज्ञानिक दवाबों का करते हुए ध्यान,
जोगीलाल ने बनाया दो मंजिला मकान।

दोमंजिले पर गृहप्रवेश हुआ
तो वहां जली रोशनी।
रोशनी देखी तो जुटने लगे
एक-से-एक नेमव्रतधारी योद्धागण
—कीट, पतंगे, नन्हकी और गन्हकी।

जिस जगह मिले आहार वहीं करें विहार
—यह जो कानून है,
कोई सरकारी कानून तो है नहीं कि जिसमें
सेक्शन से अधिक छेद पाए जाएँ।

पहुँचे कीट-पतंगा-वृन्द
तो लगे हाथों आ जुमे महाशय दादुर।
जिस जगह मिले आहार...

और आज
जोगीलाल के दोमंजिले पर
साक्षात नागराज ने दिये हैं दर्शन

वही बात, जिस जगह मिले आहार...
बहुत व्यथित हैं जोगीलाल!

ऐ बाबू जोगीलाल।
अब क्या करोगे?
कितनी-कितनी व्यथाओं से
एक ही जनम में भरोगे?

कवि ने कविता लिखी

कवि ने कविता लिखी

कविता में रमणीय शब्द दिये
शब्दों में भरा अर्थ

अर्थ में नदी उमड़ रही थी
आग धधक रही थी
उजड़ चुके थे गाँव
विलाप कर रही थीं स्त्रियाँ
और बच्चे

कविता लिखकर
कवि गया कॉफी हाउस
दोस्तों के बीच बैठा
हँसा
गाया
खूब खाया खूब पी
कविता पर खूब खूब तारीफ ली

बहुत सन्तुष्ट था कवि
बहुत तंग किया उसने उस रात
पत्नी को

और, कवि सो गया

कविता में अभी तक
धधक रही थी आग
विलाप कर रही थीं स्त्रियाँ
रो रहे थे बालबोध।

भटके हुए आदमी का निवेदन

तुमने आज जोता यह खेत
कल!
समय रहते बीज भी इसमें बो देना

देखो न,
इतनी गहराई तक धारी जो पड़ी है
फालों की मेरे भीतर,
डाल अगर दिये नहीं बीज
यूं ही सूख कर पपटी हो जाएंगे
या, झाड़-झंखार उग आएंगे
जो न तुम्हें पसन्द होगा कल! न मुझे

जानता हूँ
मेरे भीतर जो इतने सारे कीड़े हैं
बैक्टीरिया और वायरस महत्त्वाकांक्षाओं के
उन्हीं का डर है तुम्हें कि बीज तुम्हारे बेकार जाएंगे

अरे नहीं दोस्त!

ज़हर डालो मुझमें ज़हर
कल!
मैं अपनी चेतना भर उगाना चाहता हूं

तुम्हारे बीज

बहुत भटक गया हूँ
देखो न!
दिन में कई कई बार
आईना देखने लगा हूँ
इन दिनों!

उस ऑफीसर को देखो

देखो देखो उस ऑफीसर को देखो
रेल दुर्घटना में मरने वालों के लिए वह रोता है!

क्या तो बोलता है, उपभोक्ता संस्कृति!
और टीवी वालों पर खिसियाता है
हिम्मत देखो कि जिसका नमक खाता है
उसी सरकार के खिलाफ बोलता है!

वह देखो
अभी जिस आदमी के लिए वह
उच्चाधिकारियों की चिरौरी कर रहा है
वह उसका सम्बन्धी नहीं
और तो और, एक जात तक नहीं है
बाढ़ पीड़ितों की मदद के लिए
दौड़ता भागता रहता है वह तो!

कैसा बेवकूफ है!
कोई घर देने आए तब भी नहीं लेता
अपने ही 'पीसी' के रुपये

हुंह! मुस्करा के बोलता है मजदूरों से
और जानते हो!

विधर्मी की औलाद को भी उठाकर
झट गोद ले लेता है

देख रहे हो न!
सारे लक्षण मौजूद हैं
साफ लग रहा है कि इस आदमी के पास
कोई दिल है!

और, यह
कल को अगर मुकम्मल हो जाए
किसे दोष दोगे?

पाँच हजार वर्षों में

सबसे पहले आदमी ने ढूंढ़ा
अपने हिस्से का भय
फिर, भय को बहलाने के लिए ईश्वर ढूंढ़ा

कहाँ बसेगा ईश्वर?
क्या खाएगा?
अतः आदमी ने धर्म को ढूंढ़ निकाला
किले बने तो किलेदार भी तय किये गये

फिर आदमी ने ढूंढ़ा
अपने बौनेपन को ढंकने का उपाय
और, कभी मूरतें तोड़ी गयीं
कभी मस्जिद ढाहे गये

इस बीच
कभी कभार शर्मिंदा भी होता रहा आदमी
और चिल्लाता रहा
कि मन्दिर और मस्जिद एक हैं
एक ही हैं ईश्वर और अल्लाह

चिड़ियां ही उगाती हैं धूप

बीज में छिपे पेड़ की तरह
मैं तो
यूं ही देर सुबह तक
सोता रहता हूं
रोज़ रोज़

बाहर–
चिड़ियां ही शोर मचाती हैं
सिर पटकती हैं
और अन्ततः
मेरे लिए उगाती है धूप

जबकि
हर कोई जानता है–
इन कजरारे सर्द वर्षों में
धूप कितनी जरूरी है
मेरे लिए...

चलन

जैसा कि चलन चला आया है
भोलू चुराता है पराई दौलत और गोलू विरोध नहीं करता
तो इसका मतलब है कि भोलू और गोलू रिश्तेदार हैं
या एक ही जाति के हैं
या एक ही सम्प्रदाय के
या एक ही पार्टी के

यह चलन चला आया है

जैसा कि सामने दिख रहा है
यह चलन भी खूब है
कि राजनेता चुरा ले जाते हैं देश
दलाल अर्थव्यवस्था चुरा ले जाते हैं
नानाविध हीरोइनें चुरा ले जाती हैं औरत की औकात
धरम के रक्षक धरम चुरा ले जाते हैं
कोई चीनी चुराता है कोई तेल
कोई तेल और चीनीवाली धरती के
सपने चुरा ले जाता है

लेकिन, भोलू और गोलू चुप रहते हैं

क्यों नहीं कहा जा सकता

कि अपने इस प्रजातन्त्र में
ऐसा चलन है कि दवाइयाँ तहखाने में कैद हैं
और रोग तय करते हैं आदमी का भविष्य

यह चलन भी देखिए
भोलू-गोलू चुप रहते हैं
तो मतलब है कि वे भी चोरों से कमीशन खाते हैं
या खाने की ललक रखते हैं
या चाहते हैं कि यह ललक पैदा हो उनमें

यही एकतरफा निर्णय क्यों
कि झेल लें वे थोड़ा और तनाव
तो शुरू हो विद्रोह
या
चुप हैं भोलू गोलू
तो समझो तूफान आने वाला है
यही एकतरफा निर्णय क्यों?
कवि जिसे बता रहे हैं अनर्थ! महा अनर्थ!
भोलू गोलू उसी में ढूंढ़ रहे हैं
अपना भविष्य!

आप मुझे बताइए
यह जो चलन है
भोलू गोलू का चुप रहना
भारतीय दंड संहिता की
किस धारा के अंतर्गत जुर्म है?
या
संविधान के किस विधान के अनुसार
यह है राष्ट्रसेवा
जिसके लिए मिलना चाहिए उन्हें पुरस्कार!
आप मुझे बताइये!!!

हमारे समय की खूबी

लड़के बाजार पर कविता लिख रहे हैं

जो जहाँ रहेगा,
वहीं की कविताएँ लिखेगा,
जैसे मैं गाँव की कहानियाँ
लिखा करता हूँ।

कहते थे नागार्जुन—
खाओगे शकरकन्द उगलोगे कलाकन्द
यह कैसे होगा?

लड़के चाहते है।—
सब कोई बाजार के खिलाफ खड़े हों
लेकिन बाजार के बीच खड़े होकर।
लड़के बाजार नहीं छोड़ना चाहते,
गाँव जाकर उनका भविष्य असुरक्षित है।
गाँव कहां से उन्हें यह सिस्टम देगा?

देखता हूँ—
लड़के कबीर होना चाहते हैं
चिल्ला भी रहे हैं लगातार—
जो घर जारे आपना, जो घर जारे...

लेकिन हमारे समय की यह खूबी देखो
कबीर के हाथ में लुकाठी नहीं है
मोबाइल है।

मोबाइल के विरुद्ध कविताएँ लिखते हैं लड़के
मोबाइल द्वारा ही मांगते हैं सम्पादकों से आशीष।

विजेता

ज्वाला का न एक कतरा भी आगे
सहयोगी की न एक आहट भी पीछे
मगर तुमने देखा कि फिर भी मैं बढ़ा जाता हूँ
सरपट आगे
सरपट आगे

अपना ही हाड़ मांस जला जो है ज्वाला
अपने ही श्वासों का आरोह अवरोह की आहट
तो समझूँ सहयोगी

अपनी ही वीरान ज़िन्दगी में उगा के
कराही कराह बाग बगीचे
चढ़ी जवानी इन
तो कोयल की कूक से संगिनी ज्वाला
पपीहे की हूक से

तब कहिये
कभी रही सहयोगियों की?

अपने ही मानस की खाइयों को पाट पाट
बनाऊँ समतल उगाऊँ कल्पवृक्ष
तब तो जाने कितने बाल गोपाल

चले ही आएँगे माँगने आह्लादवश

उन सबको ही पुकारूँगा
मीत ओ मीत!

सो भाई, कहिए
जो कहते हैं कि उजाला सिर्फ बत्ती के जलने से होता है
और अँधेरा सिर्फ उजाले के मरने से

कितना झूठ कहते हैं वे!

❑❑❑



तारानन्द वियोगी

जन्म : 1966 में महिषी (सहरसा) में जन्म।

शिक्षा : साहित्याचार्य, एम. ए. पी-एच. डी. आदि।

मिथिला-समाज में एक प्रखर मुखर साहित्यकर्मी के रूप में प्रख्यात, वहीं अपने गाँव-घर के परिसर में एक एक 'क्रियावान विद्वान' के रूप में जाने जाते हैं, जो हमेशा किसी न किसी सामाजिक-सांस्कृतिक अभियान को पूरा करने में अपनी टीम के साथ लगा रहता है। सृजनात्मक तथा आलोचनात्मक दोनों ही प्रकार के लेखन में समान रुचि एवं गति किन्तु मूलतः कवि। मैथिली में दलित-साहित्य के प्रतिष्ठापक बताए जाते हैं। मौलिक एवं विचारोत्तेजक लेखन के लिए लगातार चर्चित और विवादित भी। कहानियाँ भी लिखी हैं और आलोचनात्मक ग्रन्थ भी, जिन्हें महत्त्वपूर्ण माना गया। यात्री नागार्जुन की संगत में रहे, जिसका आख्यान 'तुमि चिर सारथि' लिखा जिसे बहुत पठनीय माना गया। हिन्दी में भी इसे 'पहल' ने छापा। अनेक रचनाओं का विभिन्न भारतीय भाषाओं एवं अंग्रेजी में अनुवाद।

प्रमुख कृतियाँ : अपन युद्धक साक्ष्य, हस्तक्षेप (कविताएँ), अतिक्रमण, शिलालेख (कहानियाँ) कर्मधारय, धूमकेतु, रामकथा आ मैथिली रामायण (आलोचना) राक्षस की अंगूठी, ई भेटल तँ की भेटल (बालसाहित्य), महिषी की तारा : इतिहास और आख्यान (क्षेत्रीय इतिहास) देसिल बयना, श्वेतपत्र, राजकमल चौधरी : सृजन के आयाम, मण्डन मिश्र और उनका अद्वैत वेदान्त, एकटा चंपाकली एकटा विषधर, भनहि विद्यापति आदि-आदि (संपादित-अनूदित कृतियाँ)

सम्प्रति : बिहार प्रशासनिक सेवा में अधिकारी

सम्पर्क : बदरिकाश्रम, महिषी, सहरसा बिहार 852216
दूरभाष—06478-277144, मोबाइल—09431413125



अविनाश

जन्म : 14 जनवरी 1976, दरभंगा (बिहार)

शिक्षा : स्नातक पढ़ाई के दौरान ही प्रभात खबर (राँची) से पत्रकारिता प्रारम्भ; राजेन्द्र सिंह के साथ पानी के मुद्दे पर राजस्थान में कुछ दिनों तक कार्य; मोहन श्रोत्रिय के साथ पाँच किताबों का लेखन; प्रभात खबर के पटना और देवघर संस्करण का स्थानीय सम्पादक, प्रभात खबर के बिहार विशेषांक का सम्पादन; चन्द्रशेखर की पुस्तकों के सम्पादन में हरिवंश का सहयोग; जुलाई 2005 से जुलाई 2008 तक एन.डी.टी.वी. में आउटपुट एडीटर; इन दिनों भोपाल में डी बी स्टार का सम्पादन; मोहल्ला नामक ब्लॉग पर काफी सक्रिय।

सम्पर्क : 6, द्वारका सदन, प्रेस कॉम्प्लेक्स, एमपीनगर, भोपाल (म. प्र.)
मोबाइल : 09977600884